स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी लघुकथा: सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना

-डॉ. खेमकरण 'सोमन'

सारांश:-

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का प्रारम्भिक दशक हिन्दी लघुकथा के लिए सशक्त चिंतन-मनन, प्रभावशाली विधा के रूप में स्व-पथ निर्धारण एवं उस पर अग्रसरण का था। छठवें-सातवें दशक से वर्तमान कालावधि तक धीमी यात्रा के बावजूद इस विधा को व्यापक स्वीकार्यता एवं सम्मान मिला है। आज सामाजिक-सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं साहित्यिक भूमिका का निर्वहन करते हुए यह विधा विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं, जर्नल, ई-मैगजीन, संग्रह-संकलन और ब्लॉग में निरन्तर प्रकाशित-प्रशंसित होती रही है। विभिन्न महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में अभी तक सौ से अधिक शोध एवं लघुकार्य सम्पन्न हुए हैं जो इसकी भूमिका, गरिमा, सर्व-स्वीकृति और विकास की दिशा में उपलब्धि है। स्वतन्त्रता पूर्व सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका के दृष्टिगत इस विधा में निस्संदेह बहुत कम रचा गया, पर अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति यह जिस प्रकार पराधीन भारत में सक्रिय थी, उससे भी अधिक स्वाधीन भारत में सक्रिय है।

मूलशब्द:-

लघुकथा, सामाजिक, सांस्कृतिक, स्वतन्त्रता, चेतना, आधुनिक, विश्लेषणात्मक शोध, यथार्थवादी स्वरूप, लघु आकार, भारतेन्दु युग।

अध्ययन का उद्देश्य:-

हिन्दी साहित्य की नव्यतम विधा 'लघुकथा' का विधागत अस्तित्व एवं यथार्थवादी स्वरूप यद्यपि भारतेन्दु युग में दृष्टिगोचर होने लगा था, तथापि इस विधा पर सम्यक शोधकार्य स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त ही संभव हो सका। परतन्त्र भारत में लिखी गई लघुकथाओं का सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के सन्दर्भ में मूल्यांकन इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

शोध पद्धति:- प्रस्तुत शोधपत्र को पूर्ण करने में विश्लेषणात्मक शोध, मनोविश्लेषणात्मक शोध, तुलनात्मक शोध, व्याख्यात्मक शोध एवं आलोचनात्मक शोध पद्धति का सहयोग लिया गया है।

प्रस्तावना:-

वर्तमान में हिन्दी लघुकथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, ब्लॉग और ई-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही है। जिनमें सामाजिक-सांस्कृतिक और आधुनिक चिंतन मुखरता एवं प्रमुखतः से परिव्याप्त है। लगभग आठ दशक पूर्व अर्थात स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी लघुकथा की दशा एवं दिशा पर विचार करें तो इसकी दशा-दिशा वर्तमान सदृश्य बिलकुल भी नहीं थी। तब लघुकथा परिमाणात्मक एवं गुणात्मक रूप में भी कम लिखी गई थी। साथ ही उपलब्ध लघुकथाओं में सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना के तत्व भी प्रमुखता से नहीं दिखते। नवजागरण के परिणामस्वरूप देश में राजनीतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन एवं स्वतन्त्रता हेतु सामाजिक एकरूपता भी स्थापित होने लगी थी, तथापि विचार करने पर स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी लघुकथा की विशेषकर वैचारिक स्थिति बहुत क्षीण प्रतीत होती है। कारणों की सतह में जाने से ज्ञात होता है स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी लघुकथा का विधागत अस्तित्व। उस समय लेखकों को ज्ञात नहीं था कि कहानी, कविता, निबन्ध और उपन्यास आदि विधाओं की तरह लघुकथा भी कोई विधा है! परन्तु विषयवस्तु के दृष्टिगत तत्कालीन लघुकथाकारों ने लघुकथाएँ लिखीं।

लघुकथा की आधारभूमि जैन-कथा, बोध-कथा, नैतिक कथा, प्रेरक कथा, पंचतन्त्र की कथा, वेद, पुराण, उपनिषद की कथा, लघु व्यंग्य कथा अथवा लघुआकारीय धार्मिक कथा और लोककथा है, अतः स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी लेखकों द्वारा इन्हीं मानकों पर अधिकांश लघुकथाएँ लिखी गई हैं, तथापि इन लघुकथाओं में आधुनिक यथार्थबोध दिखता है। इस दृष्टि से यह कहना समीचीन होगा कि स्वतन्त्रता पूर्व का काल हिन्दी लघुकथा हेतु एक प्रकार से संक्रान्तिकाल है, जब इस काल की लघुकथाएँ धीरे-धीरे अपना पुराना चोला त्यागकर, सामाजिक-यथार्थवादी बनने का सफल प्रयत्न कर रही हैं।

स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी लेखकों द्वारा अन्य विधाओं में लिखे गए साहित्य में विदेशी शक्तियों के विरूद्ध प्रतिरोध के स्वर प्रमुखतः से हैं। इसके सबसे बड़े अगुआ स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। यद्यपि देश गुलाम था अतः लेखकगण अपना आक्रोश अन्य क्रियाकलापों सहित साहित्य-संस्कृति द्वारा भी प्रकट कर रहे थे। देश की स्वतन्त्रता में

साहित्य की भूमिका को बड़ी भूमिका, एक बड़ा औजार मानते थे। इन्हीं औजारों में एक लघुकथा भी है। इन लघुकथाओं में तत्कालीन परतन्त्र भारत अपने सामाजिक-सांस्कृतिक रूप में उभरता हुआ दीखता है।

स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी लघुकथा: सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना:-

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 1875 ई0 में प्रकाशित 'अंगहीन धनी'मात्र 53 शब्दों की महत्वपूर्ण लघुकथा है जिसके आस्वादन से हँसी का भाव उपजना स्वाभाविक है! परन्तु इस लघुकथा का विषयवस्तु गम्भीर है। अतः चेहरे पर हँसी का भाव लाकर इतिश्री नहीं की जा सकती। यह लघुकथा, व्यंग्यात्मक शैली-स्वरूप में गुलाम भारत को गुलाम बने रहने की बड़ी त्रासदी को देश के समक्ष प्रस्तुत करती है। देश जब पराधीन था तो धनिकों की पीढ़ी किस कार्य में संलग्न थी? यह लघुकथा इस सन्दर्भ में कई भेद खोलती प्रतीत होती है-

एक धनिक के घर उसके बहुत से प्रतिष्ठित मित्र बैठे थे। नौकर बुलाने को घंटी बजी। मोहना भीतर दौड़ा, पर हँसता हुआ लौटा और नौकरों ने पूछा, ''क्यों हँस रहे हो?'' तो उसने जवाब दिया, ''भाई, सोलह हट्टे-कट्टे जवान थे। उन सभों से एक बत्ती न बुझे, जब हम गए तो तब बुझे।''[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की उक्त लघुकथा, व्यंग्य-विनोद की किताब 'परिहासिनी' में संकलित है। हिन्दी की प्रथम लघुकथा कही जाने वाली इस लघुकथा के सम्बन्ध में तर्क दिया जाता है कि यह हास्य विनोद की है परन्तु विचारणीय है कि भारतेन्दु जैसा गम्भीर साहित्यकार आखिर मनोरंजन हेतु क्यों लिखेगा? जबकि 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' के अपने बलिया वाले भाषण में उन्होंने अपनी राष्ट्रीय आकांक्षा इस प्रकार व्यक्त की, ''सुधारना भी ऐसा होना चाहिए कि सब बात में उन्नति हो। धर्म में, घर के काम में, बाहर के काम में, रोजगार में, शिष्टाचार में, चाल-चलन में, शरीर के बल में, युवा में, वृद्ध में, स्त्री में, पुरूष में, अमीर में, गरीब में, भारतवर्ष की सब अवस्था, सब जाति, सब देश में उन्नति हो।...जो लोग अपने को देश-हितैषी लगाते हों, वे अपने सुख का होम करके अपने धन और मान का बलिदान करके कमर कस कर उठो। कोई धर्म की आड़ में छिपे हैं...।''[2]

भारतेन्दु बाबू के कथनानुसार कहना उचित होगा कि लघुकथा तत्कालीन धनिक वर्ग पर व्यंग्य है। प्रतिष्ठित हट्टे-कट्टे, सोलह लोग अपने मौजमस्ती में इतने निमग्न है कि उन्हें एक बत्ती बुझाने के लिए भी नौकरों की आवश्यकता अनुभव होती है। ऐसे में ये तथाकथित प्रतिष्ठित लोग, परतन्त्र देश की कराह कैसे सुनते जो स्वयं अपनी आवाज सुन पाने में अक्षम हैं। विचारणीय है कि समाज के धनिक वर्ग में अपने देश के प्रति सामाजिक जागरूकता अभाव किस सीमा तक व्याप्त है। संभवतः इसी कारण अपने नाटक भारत दुर्दशा में भारतेन्दु ने देशी राजाओं को गधा तक कहा और, इस साहस के सन्दर्भ से ही तत्कालीन पत्रकारों-साहित्यकारों ने उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि प्रदान की। वहीं इसके विपरीत उपरोक्त लघुकथा का सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक अर्थ यह भी प्रतीत होता है कि संभव है सभी धनिक देश की स्वतन्त्रता हेतु किसी निश्चित योजना के निर्माण हेतु कटिबद्ध हों! जिसका आशय मोहना समझ न पाया हो?

आधुनिकता चमक-धमक और दिखावे की विसंगतियाँ भी साथ लाई है। सामाजिक सम्मान हेतु मनुष्य की दिखावटी मानसिकता की जड़ें अतीत से ही बहुत गहरी हैं। नकली-असली के मर्म को उद्घाटित करती माखनलाल चतुर्वेदी की लघुकथा 'नथ' अपने अन्दर इसी प्रकार का भाव उजागर करती हैं।

लघुकथा में पति द्वारा सुन्दर रमणी को नथ बनवा दी जाती है। अभाव की स्थिति में भी उसकी इच्छा है कि नथ को आसपास के लोग देखे और उनके द्वारा प्रशंसित हो। इसी कारण वह सार्वजनिक स्थल मंदिर भी जाती है। मंदिर में साधु उससे नथ के विषय में कुछ पूछते हुए कहते हैं-''जिस तरह नथ बनवाने वाले की कीर्ति फैलाने तुम मंदिर तक चली आई हो बेटी, उसी तरह नथ देने वाले के पहले कभी नाक देने वाले का स्मरण किया है।''[3]
उपदेशात्मक-बोधात्मक शैली की उक्त लघुकथा में साधु द्वारा दो बातें दृष्टिगोचर होती हैं- प्रथम यह कि रमणी को वह उपदेश दे रहे हैं। दूसरा यह कि चरम अभाव में भी नथ दिखाने की अथवा दिखावे की संस्कृति से न गुलाम भारत मुक्त हो सका था, न वर्तमान स्वतन्त्र भारत! वर्तमान में तो यह संस्कृति मनुष्य एवं समाज के सिर पर बैठी हुई है।

लघुकथा इस ओर भी इंगित करती है कि जिस ईश्वर ने नाक दी है, उसका भी स्मरण कर लिया जाए। सांकेतिक रूप में यह भी कि मनुष्य को अपनी नाक अर्थात प्रतिष्ठा के अनुसार ही कार्य करना चाहिए। इहलौकिक उद्देश्य के द्वारा लघुकथा वास्तव में लौकिक उद्देश्य तक पहुँचती प्रतीत होती है। माखनलाल चतुर्वेदी की दूसरी लघुकथा 'अधिकारी पाकर'[4] भी उल्लेखनीय प्रस्तुति है, जो वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था पर सटीक बैठती है।

लघुकथा के केन्द्र में महर्षि रामकृष्ण परमहंस हैं, जो मन्त्र की सार्थकता के विषय में एक कथा सुनाकर विशेष निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। लघुकथा का धार्मिक आवरण हटाकर यदि लघुकथा का वर्तमान सन्दर्भ ग्रहण करने का प्रयास करें तो यही अनुभूति होती है कि कलयुग से छलयुग में रूपांतरित हो रही दुनिया में शक्तिशाली व्यक्तियों के हाथों में ही सारी शक्ति, सारे मन्त्र आ गए हैं और शक्तिशाली व्यक्तियों के लिए उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण लूट के बड़े मंत्र बन हैं। इन्हीं मंत्रों द्वारा इक्कीसवीं सदी के विकास की घोषणा की जा रही है!

लघुकथा का प्रतिपाद्य विषय यह है कि राजा के कहने पर भी प्रधानमंत्री राजा को गायत्री जप नहीं सिखाते! राजा किसी अन्य ब्राह्मण को खरीदकर वह मन्त्र सीख लेता है। तब प्रधानमन्त्री कहता है कि मन्त्र वही है परन्तु उसका गुण और उसका प्रभाव वह नहीं है। राजा शीघ्र ही आज्ञा देता है कि इसे प्रमाणित कीजिए! प्रधानमन्त्री राजमहल में कार्य कर रहे एक लड़के को बुलाता है और कहता है कि इस राजा को दो चपतें लगाओ! परन्तु लड़का ऐसा करने में स्वयं को असमर्थ पाता है। तदुपरान्त क्रोधित राजा आज्ञा देता है कि प्रधानमन्त्री को चपतें लगाओं। लड़का शीघ्रता से प्रधानमन्त्री को चपतें लगा देता है।

प्रधानमन्त्री हँसते हुए कहता है कि इस घटना के द्वारा मैंने अपनी बात प्रमाणित की। राजा पूछता है-कैसे? तब प्रधानमन्त्री पुनः कहता है, ''मेरी आज्ञा भी वही है जो आपकी है, उसका पालन करने वाला व्यक्ति भी वही है, किन्तु अधिकारपूर्ण वाणी मुझसे बड़ी है। जब मैंने आज्ञा दी, तब उन्हीं शब्दों का उस लड़के पर कोई असर न हुआ, जब आपने आज्ञा दी, तब उस लड़के ने आज्ञा का तुरन्त पालन कर दिया। मन्त्रों की भी यही हालत है। वे अधिकारी पाकर ही कार्य करते हैं।'' कहने का आशय है कि पैसा और शक्ति

भी ऐसे मन्त्र हैं, जिनके पास होते हैं। मात्र उनके लिए ही कार्य करते हैं। अन्यथा समाज-संस्कृति की स्थिति और भी सकारात्मक एवं सुखद होती।

कम पुरूष ही स्त्री के जैविकीय अस्तित्व की अनुभूति करते हैं। विचारणीय है कि स्त्री की भिन्न-भिन्न प्रस्थितियों में अपना अस्तित्व, और भिन्न-भिन्न अस्तित्व में अपनी प्रस्थिति है। इन्हीं में से एक प्रस्थिति है पत्नी। पति-पत्नी के सम्बन्ध मधुर एवं बहुत संवेदनशील होते हैं। प्रायः शिक्षित पुरूषों की अ-व्यावहारिकता देखने को मिलती है। विशेषकर इक्कीसवीं सदी में, कई उदाहरण मिलते हैं, जिनमें कम पढ़ा-लिखा व्यक्ति अधिक पढ़े-लिखे व्यक्ति से अधिक व्यावहारिक होता है!

जयशंकर प्रसाद की लघुकथा 'कलावती की शिक्षा' ऐसे ही पढ़े-लिखे अव्यावहारिक पति श्यामसुन्दर और अनपढ़ परन्तु व्यावहारिक पत्नी कलावती को रेखांकित करती है। लघुकथा पति-पत्नी की नोंक-झोंक और प्यार के विषयवस्तु पर आधारित है-

'तुम पढ़ने का सुख नहीं जानतीं, इसलिए तुमको समझाना ही मूर्खता है।

'मूर्ख्र बनकर थोड़ा समझा दो।'

'वह तुम इस जन्म में नहीं समझोगी।'

'देखो, उस जन्म में भी ऐसा बहाना न करना।'[5]

कलावती के संवाद उत्सुकता जगाते हैं। वास्तव में संवाद से प्रतीत होता है कि अपने विद्वान पति की अपेक्षा कलावती अधिक विदुषी है।

वर्तमान सामाजिक-सांस्कृतिक और विशेषकर राजनीतिक विद्रूपता देख पढ़ा-लिखा वर्ग अधिकांशतः मौन ही रहना चाहता है। यही स्थिति परतन्त्र देश की थी, अन्यथा देश कब का स्वतन्त्र हो जाता; परन्तु तत्कालीन धन्नासेठों में अंग्रेजों का भय भी व्याप्त था। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की लघुकथा 'सेठजी'[6] इसी पृष्ठभूमि पर आधारित है।

लघुकथा देश की आजादी हेतु धन एवं सहयोग की भावना पर आधारित है। सेठजी को कहा जाता है कि महात्मा गांधी आ रहे हैं, उनके पर्स के लिए कुछ दीजिए। सेठजी को डर है कि खुफिया एजेंसी हर समय तैयार रहती है। कोई रिपोर्ट कर देगा तो पुलिस उनको गिरफ्तार

कर लेगी। तब लघुकथा लेखक कहता है, ''मैं दिन-रात चन्दा माँग रहा हूँ। जब मुझे ही पुलिस न पा सकी तो रिपोर्ट आपका क्या कर लेगी?'' आत्मकथा शैली में लिखी गई इस लघुकथा में 'मैं ' की बात सुनकर सेठजी दाँत निकालकर जो मुद्रा बनाई, उसकी ध्वनि थी- ''हें, हें, हें!''

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, स्वाधीनता सेनानी पत्रकार-लेखक भी थे। उन्होंने अनुभूत किया कि देश की आजादी के लिए तत्कालीन धन्नासेठों में अंग्रेजों का भय बैठा हुआ है। अतः परतन्त्र भारत के सेठ, देश की स्वतन्त्रता हेतु क्या चिन्तन-मनन करते होंगे, जब उनके कथन ये हों- 'हम इस झगड़े में नहीं पड़ते। सेठजी को देश की स्वतन्त्रता हेतु संघर्ष कर रहे गांधी का प्रयत्न ऐसे लगते है जिसमें फँसकर उनके प्राण-पखेरू उड़ जाएँगे।
शिक्षा, किसी भी देश और समाज का बुनियादी आधार है। यह ईमानदार नागरिकों का निर्माण और समग्र दुनिया को एकजुट करने का कार्य करती है। इसके विपरीत शिक्षा प्रदान करने वाला शिक्षक ही यदि पक्षपातपूर्ण-भेदभाव करने लगे तो इससे बड़ी विसंगति और क्या होगी? इसी विषय पर रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' की लघुकथा 'अंगूठे की खेती'[7] जो अपनी भाषा-शैली और शिल्प के दृष्टिगत निस्संदेह आधुनिक हिन्दी लघुकथा के बहुत निकट है।

लघुकथा का कथानक है पांडित्य, आचार्यत्व और राजगुरूत्व आदि महिमाओं से मंडित आचार्य द्रोण ने कौतूहल के साथ जब यह सुना कि भील युवक धनुर्विद्या में अप्रमेय प्रतिभा, कौशल एवं लाघव से युक्त हो, किसी को भी चुनौती देने की क्षमता रखता है तो उनका अर्जुन के प्रति मोह जाग उठता है। सोचने लगे, क्या अर्जुन को भी चुनौती दे सकता है यह भील?

वह, भील एकलव्य की कुटिया में इस तरह पहुँच गए कि एकलव्य को इसका आभास तक न हुआ। एकलव्य का अभ्यास देख द्रोणाचार्य हर्षविभोर हो उठे। उन्होंने एकलव्य की प्रशंसा की और गुरू-दक्षिणा के बदले में एकलव्य का अंगूठा धरती पर गिर पड़ा।

लघुकथा की अंतिम पंक्तियाँ हैं- ''एकलव्य न रहा। महाद्रोही द्रोण भी न रहे, पर अँगूठा भूमि में सड़-गलकर उपजा-एक के सौ, हजार, लाख, करोड़ अँगूठे उपजे। आज द्रोणाचार्य के उत्तराधिकारी अध्यापक वर्ग को जिधर से देखो, उधर से अँगूठा ही तो मिलता है।''

रामचन्द्र श्रीवास्तव की लघुकथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और विद्रूपता पर कटु प्रहार करती है। वर्तमान समय में लाखों द्रोणाचार्य हैं जो शिक्षा व्यवस्था के अंग के रूप में दृष्टिभंग का शिकार होकर एकलव्य का अँगूठा काट रहे हैं। यह तर्क भी अनुचित प्रतीत होता कि द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य का अंगूठा माँगने की सोच तत्कालीन व्यवस्था के अनुरूप रही होगी। ध्यातव्य हो कि मनुष्य ही कोई व्यवस्था का निर्माण करता है। इस दृष्टि से यह लघुकथा शोषणमुक्त समाज के पक्ष में खड़ी दिखती है।

वर्तमान राजनीति में राजनेताओं की करनी-कथनी नितान्त भिन्न है। क्षेत्रीय और राष्ट्रीय समस्याओं के निदान करने की अपेक्षा कई प्रकार की समस्याएँ भी राजनीति और राजनेताओं की देन हैं। कहने का आशय है कि राजनीति पूर्णतः अवसरवाद का खेल हो गया है। यहाँ अपने ही शब्दों के निरर्थक होने का बोध होता है। इस दृष्टि से मुंशी प्रेमचंद की लघुकथा 'राष्ट्र का सेवक'[8] सदियों तक प्रासंगिक रहने वाली एक अर्थपूर्ण प्रस्तुति है।

1930 ई0 में लिखी गई इस लघुकथा के केन्द्र में राजनीति है। कथावस्तु यह है कि अपने सम्बोधन में 'राष्ट्र का सेवक' कहता है-''देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचों के साथ भाईचारे का सलूक, पतितों के साथ बराबरी का बर्ताव। दुनिया में सभी भाई हैं, कोई नीचा नहीं है, कोई ऊँचा नहीं है।''

'राष्ट्र का सेवक'की बात सुनकर दुनिया जय-जयकार करती है। 'राष्ट्र का सेवक' नीची जात की लड़के को गले लगाता है। दुनिया उसकी विशाल और भावुक हृदय से मंत्रमुग्ध है। 'राष्ट्र का सेवक' की बेटी इन्दिरा भी। अवसर देख इन्दिरा कहती है, ''श्रद्धेय पिताजी, मैं मोहना से ब्याह करना चाहती हूँ।''

'राष्ट्र का सेवक' को जब ज्ञात होता है कि मोहना वही नीच जात का लड़का है जिसे उन्होंने सबके सामने गले लगाया था, उसकी आँखें प्रलय युक्त हो जाती हैं। इस प्रकार राष्ट्रसेवकों के दोहरे चरित्र और खोखलेपन पर यह लघुकथा सामाजिक-सांस्कृतिक,

आर्थिक और राजनीतिक आदि कई दिशाओं में चिन्तन हेतु प्रेरित करती है। वर्तमान व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति स्वयंमेव घोषित करता रहा है कि वह सोने की तरह खरा और ईमानदार है। मोर का पंख लगाकर वह, मोर जैसा दिखने का प्रयत्न करने लगा है। यही नकारात्मकता व्यक्ति को वस्तुगत यथार्थ से भ्रमजाल की ओर ले जाती है। कहने का तात्पर्य है कि सत्य को स्वीकार करने की अपेक्षा व्यक्ति असत्य के दलदल में फँसता जा रहा है। इस अनुभूति के साथ कि एकमात्र वही है जो पूर्णतः शुद्ध है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की लघुकथा 'गिलट'[9] भ्रम के इसी संजाल और दिखावे की संस्कृति पर वैचारिक चिंतन प्रस्तुत करती है।

लघुकथा में स्वयं लघुकथा लेखक के अतिरिक्त दो मानवेतर पात्र हैं-सोने की अंगूठी और गिलट की नकली अंगूठी! लघुकथाकार स्वप्न में देखता है कि शुद्ध सोने की अंगूठी अपनी प्रतिष्ठा के कारण गिलट की नकली अंगूठी को डाँट रही है, ''तुझे मेरे बराबर बैठते लज्जा नहीं आती, मोर के पंख लगाकर कौवा मोर नहीं हो जाता। पानी उतरा नहीं कि तेरा वास्तविक रूप निकल आएगा। जा कहीं अन्धेरे में जाकर मुँह छिपा तेरा युग बीत गया हैं'

शुद्ध सोने की अंगूठी का कथन सत्य है परन्तु गिलट की नकली अंगूठी का उत्तर भी समाज की वास्तविक स्थिति प्रकट कर देती है, ''हम जिसके हाथ की शोभा बढ़ा रहे हैं, स्वयं वह नकली है। मेरे जैसा ही पानी उस पर भी चढ़ा हुआ है। आज गिलट का ही युग है।'' इसके पश्चात लघुकथाकार जाग जाता है। उसे अवबोध होता है कि जैसे उसके सारे आवरण उतर गए हों और वह पूर्णतः निर्वस्त्र हो गया हो। उसके उपरान्त लघुकथाकार जिस व्यक्ति को भी देखता है, वह उसे गिलट की अंगूठी जैसा ही दिखाई देता है। स्वप्न शैली की उपरोक्त लघुकथा द्वारा सहृदयों को उन वास्तविकताओं से परिचित कराने का प्रयत्न है, कालान्तर में जो स्वतन्त्र भारत की बड़ी विद्रूपता चरितार्थ होने की ओर है। अतः भाषा-शैली और उद्देश्य की दृष्टि से यह उल्लेखनीय एवं प्रासंगिक लघुकथा है।

सिर का झुकना और उठना सम्मान का प्रतीक है। जैसे किसी देश का राष्ट्रध्वज। कहने का अर्थ कि सब कुछ प्रकृतिगत हो तो सिर का झुकना और उठना किसी को भी

प्रीतिकर लग सकता है। परन्तु मनुष्य का आपसी टकराव देख प्रतीत होता है कि स्वतन्त्रता पूर्व भारत में बिना सिर के लोगों की संख्या अधिक थी! जो भविष्य में अवश्य बढ़ेगी। अर्थात भविष्य में जो लोग होंगे, वे वह बिना सिर के होंगे। जिनका सिर मनुष्य के सम्मान में नहीं झुकेगा। इक्कीसवीं सदी में सामान्य जन की भौतिकतावादी चिड़चिड़ाहट, और बड़े-बड़े देशों के मध्य आपसी टकराव का होना, प्रमाणित करता है कि यह सब 'सिर' न होने का ही परिणाम है। यदि सिर में अहम्मन्य भाव घुस जाए तो फिर सिर होने का कोई अर्थ नहीं रह जाता!

इस भावभूमि को प्रतिस्थापित करती आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री की लघुकथा 'यदि'[10] आत्मकथात्मक एवं व्यंग्यात्मक शैली में लिखी गई उत्कृष्ट लघुकथा है। लघकुथा के कथानक अनुसार एक सम्भ्रान्त व्यक्ति लघुकथा लेखक से कहता है, ''शास्त्रीजी! क्या है जब मैं आपको देखता हूँ तो मेरा ह्रदय पुलकित हो जाता है। अंग-अंग रोमांचित हो जाता है। मैं चाहता हूँ कि आपको ह्रदय से लगाकर रखूँ। परन्तु सब कुछ होता है, लेकिन मेरा सिर कभी नहीं झुकता। मैं आपके सामने कभी सिर नहीं झुका पाता हूँ। इसका क्या कारण है?''

मैंने तपाक से उत्तर दिया, ''यदि सिर होता, जब तो!''

शास्त्री जी द्वारा व्यक्त किए विचार वर्तमान में अपने भयावह स्वरूप में हैं। व्यक्ति इतना अहम्मन्य हो गया है कि घर बैठे विचार की अपेक्षा कुविचार करने लगता है। लघुकथा की यह विशेषता है कि अपने लघुआकार में वह बहुत कुछ बोधित कर देती है।

वर्तमान सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य पर लड़कियों के साथ दोहरे स्तर का व्यवहार बहुधा देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में कल्पना करें कि स्वतन्त्र पूर्व भारत की स्थिति क्या रही होगी? लड़कियों को कोसने की कथा तब भी थी, और अब भी है। आचार्य जानकीबल्लभ शास्त्री जी की अन्य लघुकथाओं में 'करमजली'[11] में इसी भाव का चित्रण है।

सामाजिक विसंगतियों को मंच पर रखती 'करमजली' शब्द अपने भिन्न अर्थ में उपस्थित है। पहली बार पिता द्वारा और दूसरी बार माँ द्वारा। लघुकथा इस ओर संकेत करती है कि वस्तुगत स्थिति कितनी शीघ्रता से परिवर्तित होती है।

लघुकथा की कथावस्तु है कि पड़ौस की लड़की, किसी लड़के के साथ भाग जाती है। तब एक पिता के हृदय-उद्गार यह थे कि, ''करमजली थी वह लड़की, जो किसी गैर जात के लड़के से शादी करके चली गई। मैं देखना, क्या शान से अपनी बेटी की शादी करूँगा।''

लघुकथा के संवाद से स्पष्ट है कि लघुकथा जात-पात और रूढ़िवादी सोच को उजागर करती है, परन्तु पिता की पाँच लड़कियों में सबसे बड़ी लड़की की उम्र पैंतीस वर्ष होने पर भी जब शादी नहीं होती, तब चिंताग्रस्त माँ अपने पति की बात सुनकर कहती है, ''करमजली वह नहीं, यह है। यह भी किसी को पसंद कर-कराकर शादी कर लेती तो बाकी चार का रास्ता भी खुल जाता।''

बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में आचार्य जानकीबल्लभ शास्त्री जैसे समर्थ कथाकार ही इस प्रकार की लघुकथा रच सकते थे जिसमें आधुनिक भावबोध का परिदृश्य हो। यह भी कि लड़की घर में हो या घर से बाहर, दोनों ही स्थितियाँ उसके अनुकूल नहीं होती। वास्तव में उसकी आन्तरिक-बाह्य परिधि ही उसकी सबसे बड़ी शत्रु है।

आधुनिकता प्रत्येक सदी में उपस्थित रहती है। यह उस सदी के मनुष्य पर निर्भर है कि वह विचारों से कितना आधुनिक है। क्या तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था इतनी दृढ़ है कि वह सामाजिक एकरूपता स्थापित करने के साथ वह बेरोजगारी को भी दूर कर सके? आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने इतने बेरोजगार पैदा कर दिए है कि बेरोजगार पेड़ में लगे फलों की भाँति गिर-गिर अपने प्राण त्याग रहे हैं। उनक दुख उन तक ही सीमित हो गया है। इस क्रम में कालीचरण चटर्जी की भावनात्मक-संवदेनात्मक शैली 'अंग्रेजी गुड़िया'[12] प्रासंगिक है।

सन् 1935 में लिखी गई उपरोक्त लघुकथा, वास्तव में आधुनिक हिन्दी की वास्तविक नींव तैयार करती है। ठोस भाषा-शैली और शिल्प की इस लघुकथा के केन्द्र में

एक ओर जहाँ सामाजिक-सांस्कृतिक और दुखात्मक पारिवारिक परिवेश है, वहीं दूसरी ओर तत्कालीन आधुनिक शिक्षा व्यवस्था पर भी एक बड़ा प्रश्न चिह्न है। नायक के पिता का स्वर्गवास हो चुका था। अतः कई प्रकार के संकल्पों के साथ उसने आधुनिक शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात भी वह दो वर्ष तक बेरोजगार यत्र-तत्र भटकता रहा। अततः लखनऊ में बीस रूपये मासिक वेतन पर उसे नौकरी मिल जाती है।

नौकरी मिलने के 25 दिनों बाद ही पत्नी का पत्र मिलता है, जिसमें लिखा था कि लल्ली बीमार है, और वह एक अंग्रेजी गुड़िया के लिए हठ कर रही है। घर-परिवार और उससे सम्बन्धित आय-व्यय के लेखा के विषय में सोचकर वह कुछ चिन्तित हो गया। लाचार हो फिर भी उसने गुड़िया खरीद ली। जब घर पहुँचा तो पत्नी रोते-रोते बताने लगी- लल्ली अब इस दुनिया में नहीं रही! वह कह गई है कि पिताजी से कह देना कि गुड़िया मेरे सिरहाने रख देना; सवेरे जगने पर उसके साथ खेलूँगी।

आधुनिक समाज की विडम्बना है कि रूपये और सम्पत्ति द्वारा व्यक्ति की शाख निश्चित हो रही है। वर्तमान कालावधि में सबसे अधिक लड़ाइयों के कारण मात्र रूपये, पैसे और सम्पत्ति हैं। इतिहास का अवलोकन अवबोधित करता है कि ऐसे उदाहरणों से इतिहास भी भरा हुआ है। निन्दनीय है कि सभ्य होने के अनेक घोषणा के पश्चात भी यह समस्या समाज से लुप्त नहीं हो रही है। 1938 ई0 में श्यामू संन्यासी की लघुकथा 'कोयले' भी इन्हीं ज्वलन्त समस्याओं को इंगित करती है-

उनकी सात पुश्तों की लड़ाई थी और वे जन्म-भर लड़ते रहे।

एक दिन श्मशान की उस काली भूमि पर दो चिताएँ जलीं और ठण्डी हो राख एक दूसरे को छूती घुलती-मिलती उड़ चली।

और जो एक-दूसरे से अत्यन्त घृणा करते रहे वे अपनी धूल को ही रोक कर न रख सके।''[13]

स्तरीय लघुकथा की यही विशेषता है कि उसका अंत व्यंग्यात्मक हो सकता है परन्तु यह व्यंग्य भाव अपने गम्भीर रूप में उपस्थित रहता है। जैसा कि उपरोक्त लघुकथा के आस्वादन से प्रतीत होता है। जीवनपर्यन्त स्नेह रखने की अपेक्षा एक-दूसरे से घृणा करने

वाले व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त तो हो गए परन्तु श्मशान भूमि में अपनी राख और धूलों को आपस में मिलने से रोक न सके। यह विचार सम्प्रेषित करना ही लघुकथा का उद्देश्य है।

धन, सम्पत्ति और जमीन पर इस प्रकार की अनेक लघुकथाएँ हैं, जो यह विचार प्रदान करती है कि प्रकृति द्वारा हुए कार्य उतने हानिकारक नहीं होते, जितने कि मानव द्वार किए गए कार्य। भाव यह कि मानव को प्रकृति को अपना शिक्षक मानकर सदैव उदात्त कार्य हेतु उद्यत रहना चाहिए। यदि यह परम्परा प्रारम्भ हो गई तो निश्चित ही मानव जीवन सुखी सम्पन्न हो जाएगा। इसी मन्तव्य को रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी लघुकथा 'परम्परा'[14] में स्थापित है।

लघुकथा में राहगीर के प्रश्न पर वृद्ध किसान के सन्तुलित उत्तर द्वारा इस परम्परा का निर्वहन है कि एक व्यक्ति द्वारा लगाए गए वृक्ष के फल दूसरी पीढ़ी के लोग खाते हैं। जिस प्रकार वर्तमान में जिन वृक्षों के फल हम खा रहे हैं, वे भी किसी और के द्वारा लगाए हुए हैं। कृषक के उत्तर सुनकर राहगीर शर्मिन्दा होकर अपनी राह चला जाता है।

सम्भव है वर्तमान में 'परम्परा' जैसी बोधात्मक लघुकथाएँ न लिखी जाएँ, परन्तु 1936 ई0 में यह एक उपलब्धि थी। सनातनी भाव की दृष्टि से यह इक्कीसवीं सदी में भी प्रासंगिक है। विचार्य है कि तत्कालीन परिवेश में कविकुल के हाथों एक उल्लेखनीय रचना प्रकाश में आई, जो पेड़ लगाने की परम्परा और संस्कृति के पक्ष में है। लघुकथा की भाषा-शैली सामान्य है।

स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी लघुकथाओं के अध्ययन के पश्चात यह अनुभूति होती है कि तत्कालीन लघुकथाएँ अपने बोधात्मक एवं उपदेशात्मक स्वरूप से शैनेः-शैनैः यथार्थवादी स्वरूप ग्रहण कर रही है। उदाहरण के रूप में दिगम्बर झा की लघुकथा 'कैदी'[15] का उल्लेख करना उपयुक्त प्रतीत होता है। यह लघुकथा भी आधुनिक हिन्दी लघुकथा के निकट है जिसमें समाज, व्यवस्था और परिवार की चिन्ता मुखरित अवस्था में है।

लघुकथा के कथानक-केन्द्र में- पारिवारिक समस्याओं के परिणामस्वरूप चिन्तित कैदी है जो स्वयं के विचारों में खोया हुआ है-''टूटा सा घर चू रहा होगा। उसकी बूढ़ी माँ, मृत्यु की प्रतीक्षा करती एक कोने में कराह रही होगी। उसकी बेबस मजबूर पत्नी छोटे-से बच्चे को

सूखी छाती से चिपकाए एक ओर सिमटी बैठी होगी और अंधियारा बढ़ता ही जा रहा होगा।''

सोचते-सोचते उसका आर्त्तनाद चीख उठता है...नहीं...नहीं! वह पूर्णतः बेकसूर है। घर-परिवार उसे स्मरण करते हुए विलाप कर रहे होंगे। वह अपने परिवार और उसकी घोर आर्थिक समस्या से इतना विचलित हुआ कि उसकी आँखें भर आई। लाईन हाजिरी के समय भी उसे अनुभूत हुआ कि यह जो बारिश हो रही है। वास्तव में बारिश नहीं अपितु उसके पारिवारिकजनों की आँखों के आँसू हैं। इन आँसुओं की बूंदों में वह स्पष्टतः अपनी माँ, पत्नी और मासूम बच्चों की तस्वीरें देख पा रहा था। लघुकथा की संरचना प्रशंसनीय है। स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी लघुकथाओं में इस प्रकार ठोस शिल्प, की लघुकथाएँ कम ही दृष्टिगोचर होती है। लघुकथा की भाषा-शैली भी सशक्त है।

समाज में इतने परिवर्तन हो रहे हैं कि वर्तमान समाज जटिल होता जा रहा है। इस जटिलता के कारण कई प्रकार की विसंगितयाँ भी जन्म ले रही हैं। एक विसंगति यही है कि वर्तमान सभ्यता में उसी व्यक्ति की पूछ और सुनवाई होती है जो, स्वछन्द होकर दूसरे व्यक्तियों को कुचल देता है! और स्वयं जोर-जोर से चीखता रहता है। आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र की लघुकथा 'संसार का नियम' देश के स्वतन्त्र होने से एक वर्ष पूर्व लिखी गई थी, जो स्वतन्त्र भारत के भविष्य की रूपरेखा है-

एक चक्की को गेहूँ-चना पीसते देखकर एक दर्शक ने पूछा, ''अरे! तू कैसी धूर्त है, दूसरों को पीसती है और अपने आप चीखती है?''

''बंधु! तू नहीं जानता'' चक्की ने उत्तर दिया, ''इस संसार में उसी की पूछ और सुनवाई होती है, जो दूसरों को पीसता भी रहे और अपने आप चीखता भी रहे।''[16]

आचार्य जगदीश चन्द्र की लघुकथा की शैली वही है जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लघुकथा 'अंगहीन धनी' की। दोनों ही व्यंग्यात्मक शैली में उत्कृष्ट लघुकथाएँ हैं, जिन्हें पूर्वाग्रह से रहित होकर समझने की आवश्यकता है। 'अंगहीन धनी' जहाँ परतन्त्र भारत के अंगहीन धनियों पर आधारित है, वहीं लघुकथा 'संसार का नियम' पूछ और सुनवाई शब्द की व्यावहारिकता पर जोड़ देती है।

लघुकथा में मानवेतर पात्र चक्की का मानवीकरण करके आचार्य मिश्र, अभिव्यंजनात्मक अर्थ द्वारा पाठकों को निश्चित ही चेतनाशील बनाने के आग्रही प्रतीत होते हैं। इस रूप में भी चिंतन बिन्दु प्रदान करते हैं कि सामान्यजन वास्तव में गेहूँ-चने के अतिरिक्त अन्य कुछ और नहीं! और शक्तिशाली व्यक्ति चक्की। क्षण अमूल्य होते हैं। ये किसी की पकड़ में नहीं आते! बस अपनी स्वाभाविक चाल में चलते रहते हैं। यद्यपि क्षण सुख के हों या दुख के हों। तथापि एक बार बीत जाने पर लाख प्रयत्नों के उपरान्त भी वापिस नहीं मिलते। देश की स्वतन्त्रता के समय लिखी गई दिगम्बर झा की 'वे क्षण' क्षण की महत्ता पर एक उत्कृष्ट लघुकथा है। इसमें कुछ शब्दों की अधिकता है परन्तु सशक्त शिल्प एवं काव्यात्मक भाषा-शैली और उद्देश्य की दृष्टि से लघुकथा प्रशंसनीय है।

आत्मकथा शैली में लिखी गई 'वे क्षण' सुखात्मक-दुखात्मक पक्षों को गहनता से उभारती है। स्वतन्त्रता पूर्व देश में इस प्रकार की लघुकथा-दृष्टि के उदाहरण कम हैं-

जिन क्षणों ने मुझसे हँसना छीना, मेरे सोने का संसार छीना, मेरे अरमानों में आग लगाई, मेरी दुनिया वीरान कर दी और तब दम लिया जब उसने मातृ-वियोग...! खैर,

जिन्हें मैंने अपने खून से सींचा है, हृदय की धड़कन से जिन्हें पाला है, और साँस की भांति से जिनमें गति प्रदान की है!

अपने जीवन के कुटिल क्षण!

जिन्हें मैं ईश्वर से भी ज्यादा महत्व देता हूँ, अपने प्रियतम से भी अधिक मानता हूँ। काश, अगर मैं उन्हें फिर से पाता!

अतीत के वे क्षण! जिन क्षणों ने किसी का सुहाग लूटा, किसी की दौलत लूटी, किसी की कीर्ति लूटी, किसी का सम्मान लूटा...!

और! जिन क्षणों ने किसी की माँग भर दी, किसी को सोने का संसार दिया, किसी की कीर्ति में चार चाँद लगा दिए, किसी को मान सिंहासन पर बिठाया!

अफसोस, वे किसी की पकड़ में आते![17]

लघुकथा प्रथम दृष्टया लघुकथा की अपेक्षा कविता का रसास्वादन देती है! बहुधा लघुकथाकारों द्वारा लघुकथा की भाषा-शैली, शिल्प और प्रस्तुतीकरण इस प्रकार होता है कि लघुकथा, लघुकथा की अपेक्षा कविता का आस्वाद देती है।

निष्कर्षः-

इस प्रकार स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी लघुकथाओं के अवलोकन के पश्चात कहना उचित होगा कि तत्कालीन लघुकथाओं में एक ओर जहाँ सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण है, वहीं, दूसरी ओर आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य का चित्रण भी। एक ओर सामान्य जन-जीवन के विभिन्न पक्ष उपस्थित हैं, तो दूसरी ओर परतन्त्र भारतीय समाज में व्याप्त प्रतिरोध भी, जिससे इस विधा की यथार्थवादी भूमिका ज्ञात होती है। एक ओर जीवन-समाज का दिखावा है तो दूसरी ओर उनसे मुक्ति की राह भी। अनुभव की तीव्रता, विसंगतियों का उजागर और मनःस्थिति का प्रकटीकरण द्वारा इस विधा ने आगे बढ़कर अपना भविष्य गढ़ा है। इसी के ध्यानार्थ सुप्रसिद्ध लघुकथा लेखक मधुदीप ने उचित ही कहा है कि, ‘‘आनेवाला समय ‘लघुकथा का भी’ नहीं ‘लघुकथा का ही’ होगा।

सन्दर्भ-सूची

1. हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु, हिन्दी की कालजयी लघुकथाएँ, सं0 मधुदीप़, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 80
2. हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु, वागर्थ, अगस्त 2017, सम्पादकीय, शंभुनाथ, भारतीय भाषा परिषद कोलकाता, पृष्ठ 06
3. चतुर्वेदी, माखनलाल, गुलाम भारत की लघुकथाएँ, सम्पादक-डॉ0 रामकुमार घोटड़, सजना प्रकाशन, राजस्थान, संस्करणः 2014, पृष्ठ 42
4. चतुर्वेदी, माखनलाल, नींव के नायक, सम्पादक-अशोक भाटिया, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करणः 2010, पृष्ठ 44-45

5. प्रसाद, जयशंकर, गुलाम भारत की लघुकथाएँ, सम्पादक-डॉ0 रामकुमार घोटड़, सजना प्रकाशन, पिलानी, राजस्थान, संस्करण: 2014, पृष्ठ 50

6. प्रभाकर, कन्हैयालाल मिश्र, नींव के नायक, सं0 अशोक भाटिया, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण: 2010, पृष्ठ 53

7. 'चन्द्र', श्रीवास्तव, रामचन्द, गुलाम भारत की लघुकथाएँ, सं0 रामकुमार घोटड़, सजना प्रकाशन, सं0 2014, पृष्ठ 59-60

8. प्रेमचंद, समकालीन लघुकथा और प्रेमचंद, सम्पादक-बलराम अग्रवाल, ग्रन्थ सदन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण: 2012, पृष्ठ 16

9. 'अश्क', उपेन्द्रनाथ, गुलाम भारत की लघुकथाएँ, सम्पादक-डॉ0 रामकुमार घोटड़, सजना प्रकाशन, राजस्थान, संस्करण: 2014, पृष्ठ 70

10. जानकी बल्लभ शास्त्री, गुलाम भारत की लघुकथाएँ, सम्पादक-डॉ0 रामकुमार घोटड़, सजना प्रकाशन, राजस्थान, संस्करण: 2014, पृष्ठ 75

11. शास्त्री, जानकी बल्लभ, पड़ाव और पड़ताल-14, दिशा प्रकाशन, संस्करण: 2015, पृष्ठ 187

12. चटर्जी, कालीचरण, गुलाम भारत की लघुकथाएँ, सम्पादक-डॉ0 रामकुमार घोटड़, सजना प्रकाशन, राजस्थान, संस्करण: 2014, पृष्ठ 76

13. संन्यासी, श्यामू, गुलाम भारत की लघुकथाएँ, सम्पादक-डॉ0 रामकुमार घोटड़, सजना प्रकाशन, राजस्थान, संस्करण: 2014, पृष्ठ 91

14. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, गुलाम भारत की लघुकथाएँ, सम्पादक-डॉ0 रामकुमार घोटड़, सजना प्रकाशन, राजस्थान, संस्करण: 2014, पृष्ठ 73

15. झा, दिगम्बर, गुलाम भारत की लघुकथाएँ, सम्पादक-डॉ0 रामकुमार घोटड़, सजना प्रकाशन, राजस्थान, संस्करण: 2014, पृष्ठ 138

16. मिश्र, आचार्य जगदीश चन्द्र, नींव के नायक, सं0 अशोक भाटिया, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण: 2010, पृष्ठ 89

17. झा, दिगम्बर, गुलाम भारत की लघुकथाएँ, सम्पादक-डॉ0 रामकुमार घोटड़, सजना प्रकाशन, राजस्थान, संस्करण: 2014, पृष्ठ 138
18. मधुदीप, साहित्य अमृत, संपादक: त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी, जनवरी 2017,पृष्ठ27

डॉ. खेमकरण 'सोमन',
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
स्वतंत्रता संग्राम सेनानी आलम सिंह फरस्वाण राजकीय महाविद्यालय तलवाड़ी-थराली,
जिला : चमोली, उत्तराखंड- 246482,
मोबाइल : 9045022156
ईमेल : khemkaransoman07@gmail.com